International Journal of Applied Research 2015; 1(9): 108-110

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(9): 108-110
www.allresearchjournal.com
Received: 23-06-2015
Accepted: 27-07-2015

छोटूराम रैगर
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज) 313001

Correspondence:
छोटूराम रैगर
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज) 313001

उतरती हुई धूप' और कॉलेज–जीवन का यथार्थ

छोटूराम रैगर

सार : समकालीन हिन्दी कथाकारों में गोविन्द मिश्रजी की अपनी अलग पहचान है। मिश्रजी ने हमारे मध्यमवर्गीय जीवन में नारी–स्वातन्त्र्य तथा प्रेम एवं काम–सम्बन्धों की बहुस्तरीय पड़ताल की है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उनका यह बहुचर्चित उपन्यास भी एक ऐसी ही पड़ताल का नतीजा है। इस उपन्यास में उन्होंने एक कॉलेजियेट युगल के धूपछाँही रोमांस और परवर्ती परिस्थितियों के परिण्णामस्वरूप उनके मोहभंग का यथार्थवादी चित्रण किया है। प्रेमिल स्मृतियों और अधूरे सपनों के प्रति उद्दाम आकर्षण के बावजूद अन्ततः उन्हें इस सच्चाई को स्वीकार करना पड़ता है कि सामाजिक यथार्थ उनके व्यक्तिगत भावावेश से कहीं ज्यादा अहम है।

'उतरती हुई धूप' गोविन्द मिश्रजी का प्रसिद्ध उपन्यास है। यह उपन्यास दो भागों में विभक्त है। इस उपन्यास में मिश्रजी ने आधुनिक भारतीय समाज में कॉलेज जीवन का यथार्थ क्या है ? अध्ययन, प्रेम और रोमाँस या कि हमारी परम्परागत सामाजिकता के विभिन्न दबाव आदि सवालों का चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास का नायक अरविन्द है। अरविन्द के प्रेम संबंधों का चित्रण उपन्यास का केन्द्र है। उपन्यास की शुरुआत कॉलेजियेट–जीवन से प्रारम्भ होती है। अरविंद होस्टल में रहता है। उसका परिचय उसी के कस्बे की एक लड़की से होता है। दोनों में मित्रता होती है और यह मित्रता प्रेम–संबंधों में बदल जाती है। दोनों साथ–साथ भ्रमण करते हैं, सिनेमा देखते हैं। इस दौरान अरविन्द की पढ़ाई का क्रम टूटता जाता है। एक तरफ पढ़ाई की चिन्ता दूसरी तरफ प्रेम में जीने की इच्छा अरविन्द के द्वन्द्व का कारण बनती है।

कॉलेज में घने पेड़ों के बीच बनाया गया एक खुला चौकोर बरामदा था। खम्भों से सटी हुई पट्टियाँ चारों तरफ थी, जिससे अन्दर, बैठनेवाले टिक सकते थे और बाहर से वे आड़ का भी काम करती थी। यह एक ऐसी जगह थी जहाँ पर अक्सर लड़के व लड़कियाँ बैठे हुए मिलते थे। निश्चित ही इस स्थान को 'लव कॉटेज' कहा जा सकता है। अरविन्द और वह लड़की भी यहीं पर मिलते मिलते थे। आज के कॉलेज और विश्वविद्यालय में व्याप्त छात्र–छात्राओं का अंतरंग संबंध। विश्वविद्यालय का वातावरण, इलाहाबाद शहर का वातावरण, प्रयाग शहर के प्राकृतिक सुरम्य स्थलों का चित्रण भी इस उपन्यास में किया गया है। इलाहाबाद उन शहरों में से है जहाँ पर हर मौसम व्यक्ति को लुभाते है।

अरविन्द ने एम.ए. के पेपर दिये इसी बीच वह लड़की उसको छोड़कर बिना बताये घर चली गयी। लड़की ने इस साल ड्रॉप करके अगले साल टॉप करने की सोची क्योंकि उस पर पारिवारिक दबाव था। अब अरविन्द की स्थिति असहाय–सी हो गयी। वह अपने भविष्य के बारे में चिन्तित है। कोई ऐसी जगह हो– किसी दोस्त वगैरह के घर जाकर कुछ दिन पड़े रहा जाये। कुछ आगे के बारे में सोचे..... अब जबकि सब कुछ हो चुका था, छूट चुका था, एक तरह से। उसी दिन कोई साढ़े चार का समय होगा। एक रिक्शे वाला दरवाजा खटखटाकर बाहर खड़ा था– 'कोई मेम साहब आपको बाहर बुला रही हैं।' वह सोचा कह दे कि नहीं आता लेकिन वह रिक्शेवाले के पीछे–पीछे चुपचाप चलता है। पास पहुँचा तो वह शून्य में उदास–उदास नजरों से देखती हुई मिली। देख रही थी या दिखा रही थी कि बहुत उदास है। अरविन्द उससे नाराज़ होता है। लेकिन लड़की कहती है ''देखो नाराज़ चाहे कितना हो लेना... पर मेरी एक बात मान लो... मैं एक दिन तुम्हारे पास रहना चाहती हूँ. ... सिर्फ तुम्हारे पास.... कितने दिनों बाद मिले हो।''[1] वे दोनों एक होटल में ठहरते है। अरविन्द उससे पढ़ाई ड्रॉप करने के बारे में पूछता है। तो वह बताती है कि उस आदमी ने मेरी ज़िन्दगी तबाह कर रखी थी। किसने ? वही जिसके पास मेरी फोटो भेजी गयी थी। वह इन सब समस्याओं की वजह से कुछ न पढ़ सकी और कोई वक्त होता तो तुम्हारे पास आ जाती पर सोचा, मैं तो चौपट थी ही पर तुम्हें क्यों करुँ ?

अँधेरा पूरा–पूरा उतर आया था। इसे लगा उनके जीवन की गति कुछ धीमी पड़ रही है। उनके बीच

जो कुछ था वह तेजी से बदल रहा था..... हालांकि अभी कुछ नहीं हुआ था और न निकट भविष्य में ही कुछ होने वाला था पर जो आने वाला या उसने उनके बीच उगना शुरु कर दिया था और ऐसा लगता था कि अनायास ही इस तरह उग रहा है वही आने वाला था।

लड़की को बाजार से कुछ सामान खरीदना था तो उसने अरविन्द से कहा। दोनों बाजार से कुछ खाने की चीजें आदि लेकर होटल वापिस लौटते है। वह अरविन्द के लिए कुछ खाने का सामान लेकर आयी थी ताकि अरविन्द स्वस्थ रहे और पढ़ाई कर सके। दोनों में आपस में बातें चलती रहती है वह पागल हो गयी थी यह उकता आया। लगा कि उसके साथ दिन खराब गया, ऐसे ही कितने और दिनों की तरह जब यह उससे अलग होकर बेहतर महसूस करता था। उकताहट के ऐसे ही क्षणों में इसे और भी लगने लगता कि जब उसे पूरा एक दिन भी नहीं बर्दाश्त नहीं कर पाता तो सारी जिन्दगी कैसे निबाह कर सकता है। प्यार के उस चरम स्तर पर ही तो जिन्दगी न बितायी जा सकती है और इन चरम क्षणों को काट दें तो फिर क्या फर्क पड़ता है कि इसके साथ नहीं किसी और के साथ रहना। उस तरह यह भी वहीं पहुँचता था जहाँ वह थी सिर्फ रास्ता जरुर दूसरा था जहाँ से चीजों को बस होने दिया जाये, देखता रहा जाये किसी से कुछ फर्क नहीं पड़ता था। दोनों साथ मिलकर खाना खाते हैं। आज हम अपने आस–पास कॉलेज में पढ़ने वाले युवक–युवतियों को सिनेमाघरों में फिल्मों का लुत्फ उठाते हुए देख सकते हैं। यह एक ऐसी उम्र होती है कि जिसमें जीवन का आनन्द लिया जा सके उनकी यही इच्छा रहती है। उपन्यास में वह लड़की फिल्म देखने के लिए अरविन्द से कहती है – ''ए, सुनो पैलेस में दिल अपना प्रीत परायी लगा है, चलोगे....? इसने घड़ी देखी, सवा नौ बज रहे थे। जाया जा सकता था। उन छोटी–बड़ी बातों में उलझे रहने से तो यही अच्छा था कि पिक्चर हो आया जाये। एक समय था उसके साथ सफर करना,उसके साथ बाजार जाना, पिक्चर जाना, क्या बात होती थी।''[2]

उसकी आँखों में याचना थी वह लड़की जिसने हमेशा इसे दिया ही था, वह तब झोली फैलाये खड़ी थी। उसकी आँखों में वह था कि यह टाल नहीं सकता था, वह कुछ भी माँगती। इसने उसकी साड़ी का पल्ला उसके सिर पर डाला। उसका सारा चेहरा उसी क्षण बदल गया। बेहद तरल हो आया था। फिल्म खत्म करके जब वे बाहर निकले तो हल्की बूंदा–बाँदी हो रही थी। कुछ बादल थे जो इधर–उधर से आसमान के एक हिस्से पर इकट्ठे हो गये थे और कुछ देर पहले अपनी एक हल्की बौछार से सड़क को गीला कर सके थे। जहाँ धूल थी वहाँ बूँद जैसी गोल–गोल चीज़ बिखरी पड़ी थी। डामर की सड़कों का कालापन गहरा गया था। फिर वे होटल पहुँचकर कर आराम करते है। अपने पहली बार के समर्पण के बाद वह नायिका इस प्रकार कहती है ''जीवन हमें भ्रष्ट करें, उसके पहले यह पूजा हम कर लें...यही अच्छा है....यही अच्छा है.... ।''[3]

इसके बाद दोनों बिछुड़ जाते हैं। माँ–बाप की इच्छानुसार उस लड़की की शादी कर दी जाती है। दस वर्ष बाद अचानक उस नायिका से अरविन्द की भेंट हो जाती है। वह कहती है – तुम तो वैसे के वैसे ही रहे अरविन्द। तुम भी तो कुछ खास नहीं बदली। वह लड़की से पूछता है कि कैसी गुजरी तेरी दस साल की जिन्दगी। तब वह कहती है ठीक था। लेकिन वह कहाँ जाये..... कहाँ जा सकती है। उसके पति को उनके सम्बन्ध के बारे में पता था और इसको लेकर एक काली छाया उसके वैवाहिक जीवन पर शुरु से ही पड़ चुकी थी। इस सबके लिए जिम्मेदार भी यह खुद था, काफी हद तक।

वह जाने के लिए तैयार होती है, चलो देर हो गयी है.....अनिल जग गया होगा, उन्हें परेशान करता होगा। किन्हें ? भाई साहब को अरे (वह अलग हो गयी है) तुम्हें बताना ही भूल गयी। इनका कितना सहारा है। मैनें भाई साहब को अपने–तुम्हारें बारे में सबकुछ बता दिया है। उन्हें मालूम है कि तुम आये हो। इन्हीं को लेकर मुझ पर कितना बड़ा कलंक लगाया गया। वह अपने पति को छोड़कर पी.एच.डी. कर रही है। एक दिन अरविन्द उसको वहीं होटल में खाने के लिए बुलाता है लेकिन वह भाई साहब को भी साथ लेकर आती है तब अरविन्द को इस भाई–साहब से चिढ़ होती है तथा वह उस लड़की के बारे शक करने लगता है।

लेकिन अब अरविन्द को लग रहा था जैसे वह सब दस साल बाद भी उसी तरह बरकरार था... वे फिट्स अब भी इसके व्यक्तित्व में थे, एक कोनें में पड़े हुए, सुलग पड़ने की राह देखते हुए। वह तो अब भी थी लेकिन उन दोनों के बीच कोई जीवित छाया थी, दैत्याकार होकर जैसे उस छाया ने इन दोनों को दबाकर उन्हें, लेई की तरह छोटी गोली की तरह बना दिया था। उनके बीच कुछ नहीं बचा था, सिर्फ वे कहानियाँ थीं जिनमें कोई दैत्य राजकुमारी को उड़ा ले जाता है और किसी जादू के वश में आकर वह उसके प्रभाव में रहने लगती है।

अरविन्द उससे पहले जैसे अंतरंग संबंधों की चाह रखता है, लेकिन नायिका इसका विरोध करती है। इस प्रकार मिश्रजी ने इस उपन्यास में प्रेम संबंधों का जो यथार्थ चित्रण किया है। उसके बारे में चन्द्रकान्त बांदिवड़ेकर का मत उल्लेखनीय है– ''इस उपन्यास में यौन और प्रेम का ट्रीटमेंट एक भिन्न स्तर पर हुआ है। पहले हिस्से में नायक संतुलित, आत्मकेन्द्रित और किंचित जटिल मालूम पड़ता है – लड़की बेहद भावुक, कमज़ोर और स्वत्व समर्पिता लगती है। किन्तु आधी मंजिल तक पहुँचते हुए दस वर्षो का दांपत्य जीवन नायिका को आश्चर्य जनक रूप से सर्द बना देता है।''[4]

भारतीय समाज एवं दाम्पत्य जीवन की महत्ता बताकर उपन्यास की नायिका अरविन्द की इच्छा का साफ इन्कार करती है। लेकिन प्रेम का संबंध ही ऐसा है कि एकदम छूटता नहीं। वह उससे अगले दिन मिलने के लिए कहती है। अगले दिन दोनों मिलते है, बातें होती है। फिर नायिका उसे रिक्शे में साथ लेकर अपने घर की ओर लेकर जाती है तथा उसे छिपकर आने की सलाह देती है। यह अलग हो गया पर अपनी हालत पर बेहद ग्लानि हो रही थी। कल का देवता आज का भिखारी बन गया था। वह भी क्या करती। अगर कोई गड्ढ़ा था तो उसे अब वह नहीं भर सकती थी, उसकी दिनचर्या में इतनी फुर्सत ही कहाँ थी। अब कई छोटे–छोटे गड्ढ़े थे जो उसे मात्र अपनी उपस्थिति से ही भरने थे।

धूप में उतरती उन सारी वस्तुओं को यह कुछ रश्क से देख रहा था। उन सबमें कोई लय थी, गति की लय। इसके पास कुछ नहीं था। एक बजे तक यों ही भटकना था। एक बजे के बाद भी भटकाव ही था। उसके साथ। उसके साथ जो होंगे उनके साथ। लौटते समय यह सोच रहा था कि वहाँ सब–के–सब जमे हुए वटवृक्ष थे और उनके दरम्यान गुजरता हुआ पतला धूप का गुबार... जो इधर से आया था और उधर से चले जाने वाला था का इशारा पाकर उसके घर पहुँचता है। नायिका उसे अपने जीवन की वास्तविकता की बात बताती है। पुराना वक्त होता तो वह इसे उस तरह तकते देख सकती थी, लेकिन जब फुर्सत ही फुर्सत थी। उसके ख्याल से अब उन्हें एक दूसरे को उस तरह लगातार देखने की इच्छा भी नहीं होनी चाहिए। यह साफ था कि उसे यह कुछ खास अच्छा नहीं लगता था कि कोई उस गहराई से देखे। अरविन्द कहता है– मैं नहीं समझता कि जो तुम कह रही हो वह महसूस करती थी पहले कभी, अभी के बारे में नहीं कहता। मैं सोचती थी कि पर क्या फर्क पड़ा तुम नहीं थे तो भाई साहब मिल गये उन्हें।

वह सुबकने लगी। उसके होठों का गिरना–उठना बिल्कुल वैसे का वैसा ही था। उसके आँसू यों लुढ़कते थे जैसे पत्तों पर बारिश की बूँदे गिर रही हो अलग–अलग, बड़ी नफासत से। इसका मन हुआ कि पहले ही की तरह उठकर उन बूँदों को उँगलियों में ले ले।

नायिका उसे शाम के खाने के लिए कहती है कि अभी तो चार

बजे है मुझे एक जगह पहुँचना है। रात को नौ बजे आना मैं खाना तैयार रखूँगी। इस बीच मैं अपना पेपर भी तैयार कर लूँगी। अरविन्द उससे मिलने की कल्पनाएँ मन में संजोता है तथा सोचता है– एक बार इसी ने कहा था उससे–तुमने जो इतने वर्षों में ही मुझे दिया है वह मुझे सब जगहों से तीन जन्म में भी नहीं मिल सकता। वह अब भी प्रस्तुत थी, जितना जो कुछ भी उसके पास था।

अरविन्द शाम के खाने के निमंत्रण पर जाता है लेकिन वहाँ पर ताला जड़ा हुआ था। वह इंतजार करता है रात दस बजे तक लेकिन वह नहीं आयी। वापिस होटल जाता है और फिर एक चक्कर और लगता है लेकिन वह नहीं लौटी। मिश्रजी इस उपन्यास में अरविन्द की मनोभावनाओं को इस प्रकार प्रकट करते है– ''कोई नहीं आया। कौन आता है। क्या फायदा है इस तरह भागते रहने से, वह भी किसके पीछे। यह सिर्फ अपने ही पीछे–पीछे भागना था, शायद। बीते हुए की लाश को लादे कल का देवता भाग रहा था, लगातार भाग रहा था.....भागने के शाब्दिक अर्थ में भी भाग रहा था।''[5]

इस प्रकार सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि इस उपन्यास के माध्यम से गोविन्द मिश्रजी यह व्यक्त करना चाहते हैं कि विवाह पूर्व प्रेम संबंध प्रायः कम ही सफल होते है क्योंकि यही सामाजिक व्यवस्था है। डॉ. विनय ने इस उपन्यास के बारे में ठीक ही कहा है–''यह उपन्यास हमारे सामाजिक ढाँचे में काफी दूर तक पड़ने वाली रेखाओं को स्पष्ट करता है। प्रेम के संबंध में आज का आदमी जिन मूल्यों से मुक्त हो रहा है, उस दिशा में यह एक और कड़ी हैं।''[6]

संदर्भ–

1. उतरती हुई धूप–गोविन्द मिश्र,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. सं. 26
2. उतरती हुई धूप–गोविन्द मिश्र,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. सं. 40
3. उतरती हुई धूप–गोविन्द मिश्र,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. सं. 54
4. सृजन के आयाम–चन्द्रकान्त बांदिवडेकर (सं.) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2007, पृ. स. 75
5. उतरती हुई धूप– गोविन्द मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. सं. 114
6. सृजन के आयाम–चन्द्रकान्त बांदिवडेकर (सं.) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2007, पृ. स. 79